# धवलाका गणितशास्त्र

◇◇◇◇

( डा. अवधेश नारायण सिंह,
लखनऊ यूनीवर्सिटी, के लेखका अनुवाद )

यह विदित हो चुका है कि भारतवर्षमें गणित– अंकगणित, बीजगणित, क्षेत्रमिति आदिका अध्ययन अति प्राचीन कालमें किया जाता था। इस बातका भी अच्छी तरह पता चल गया है कि प्राचीन भारतवर्षीय गणितज्ञोंने गणितशास्त्रमें ठोस और सारगर्भित उन्नति की थी। यथार्थतः अर्वाचीन अंकगणित और बीजगणितके जन्मदाता वे ही थे। हमें यह सोचनेका अभ्यास होगया है कि भारतवर्षकी विशाल जनसंख्यामेंसे केवल हिंदुओंने ही गणितका अध्ययन किया, और उन्हें ही इस विषयमें रुचि थी, और भारतवर्षीय जनसंख्याके अन्य भागों, जैसे कि बौद्ध व जैनोंने, उसपर विशेष ध्यान नहीं दिया। विद्वानोंके इस मतका कारण यह है कि अभी अभी तक बौद्ध वा जैन गणितज्ञोंद्वारा लिखे गये कोई गणितशास्त्रके ग्रन्थ ज्ञात नही हुए थे। किन्तु जैनियोंके आगमग्रन्थोंके अध्ययनसे प्रकट होता है कि गणितशास्त्रका जैनियोंमें भी खूब आदर था। यथार्थतः गणित और ज्योतिष विद्याका ज्ञान जैन मुनियोंकी एक मुख्य साधना समझी जाती थी।

अब हमें यह विदित हो चुका है कि जैनियोंकी गणितशास्त्रकी एक शाखा दक्षिण भारतमें थी, और इस शाखाका कमसे कम एक ग्रन्थ, महावीराचार्य-कृत गणितसारसंग्रह, उस समयकी अन्य उपलब्ध कृतियोंकी अपेक्षा अनेक बातोंमें श्रेष्ठ है। महावीराचार्यकी रचना सन् ८५० की है। उनका यह ग्रन्थ सामान्य रूपरेखामें ब्रह्मगुप्त, श्रीधराचार्य, भास्कर और अन्य हिन्दू गणितज्ञोंके ग्रन्थोंके समान होते हुए भी विशेष बातोंमें उनसे पूर्णतः भिन्न है। उदाहरणार्थ- गणितसारसंग्रहके प्रश्न ( problems ) प्रायः सभी दूसरे ग्रन्थोंके प्रश्नोंसे भिन्न हैं।

वर्तमानकालमें उपलब्ध गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यके आधारपरसे हम यह कह सकते हैं कि गणितशास्त्रकी महत्वपूर्ण शाखाएं पाटलिपुत्र (पटना), उज्जैन, मैसूर, मलबार और संभवतः बनारस, तक्षशिला और कुछ अन्य स्थानोंमें उन्नतिशील थीं। जब तक आगे प्रमाण प्राप्त न हों, तब तक यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि इन शाखाओंमें परस्पर क्या

---

१ देखो–भगवती सूत्र, अभयदेव सूरिकी टीका सहित, मेहसाणाकी आगमोदय समिति द्वारा प्रकाशित, १९१९, सूत्र ९०। जैकोबी कृत उत्तराध्यन सूत्रका अंग्रेजी अनुवाद, ऑक्सफोर्ड १८९५, अध्याय ७, ८, ३८.

संबंध था। फिर भी हमें पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंसे आये हुए ग्रन्थोंकी सामान्य रूपरेखा तो एकसी हैं, किन्तु विस्तारसंबंधी विशेष बातोंमें उनमें विभिन्नता है। इससे पता चलता है कि भिन्न भिन्न शाखाओंमें आदान-प्रदानका संबंध था, छात्रगण और विद्वान एक शाखासे दूसरी शाखामें गमन करते थे, और एक स्थानमें किये गये अविष्कार शीघ्र ही भारतके एक कोनेसे दूसरे कोने तक विज्ञापित कर दिये जाते थे।

प्रतीत होता है कि बौद्ध धर्म और जैन धर्मके प्रचारने विविध विज्ञानों और कलाओंके अध्ययनको उत्तेजना दी। सामान्यतः सभी भारतवर्षीय धार्मिक साहित्य, और मुख्यतया बौद्ध व जैनसाहित्य, बडी बडी संख्याओंके उल्लेखोंसे परिपूर्ण है। बडी संख्याओंके प्रयोगने उन संख्याओंको लिखनेके लिये सरल संकेतोंकी आवश्यकता उत्पन्न की, और उसीसे दाशमिक क्रम ( The place value system of notation ) का आविष्कार हुआ। अब यह बात निस्संशयरूपसे सिद्ध हो चुकी है कि दाशमिक क्रमका आविष्कार भारतमें ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग हुआ था, जब कि बौद्धधर्म और जैनधर्म अपनी चरमोन्नति पर थे। यह नया अंक-क्रम बडा शक्तिशाली सिद्ध हुआ, और इसीने गणितशास्त्रकी गतिप्रदान कर सुल्वसूत्रोंमें प्राप्त वेदकालीन प्रारंभिक गणितको विकासकी ओर बढाया, और वराहमिहिरके ग्रंथोंमें प्राप्त पांचवी शताब्दीके सुसम्पन्न गणितशास्त्रमें परिवर्तित कर दिया।

एक बडी महत्वपूर्ण बात, जो गणितके इतिहासकारोंकी दृष्टिमें नहीं आई, यह है कि यद्यपि हिन्दुओं, बौद्धों और जैनियोंका सामान्य साहित्य ईसासे पूर्व तीसरी व चौथी शताब्दीसे लगाकर मध्यकालीन समय तक अविच्छिन्न है, क्योंकि प्रत्येक शताब्दीके ग्रंथ उपलब्ध हैं, तथापि गणितशास्त्रसंबंधी साहित्यमें विच्छेद है, यथार्थतः सन् ४९९ में रचित आर्यभटीयसे पूर्वकी गणितशास्त्रसंबंधी रचना कदाचित् ही कोई हो। अपवादमें वख्शालि प्रति ( Bakhsali-Manuscript ) नामक वह अपूर्ण हस्तलिखित ग्रंथ ही है जो संभवतः दूसरी या तीसरी शताब्दीकी रचना है। किन्तु इसकी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतिसे हमें उस कालके गणित-ज्ञानकी स्थितिके विषयमें कोई विस्तृत वृत्तान्त नही मिलता, क्योंकि यथार्थमें वह आर्यभट ब्रह्मगुप्त अथवा श्रीधर आदिके ग्रंथोंके सदृश गणितशास्त्रकी पुस्तक नहीं है। वह कुछ चुने हुए गणितसंबंधी प्रश्नोंकी व्याख्या अथवा टिप्पणीसी है। इस हस्तलिखित प्रतिसे हम केवल इतना ही अनुमान कर सकते हैं कि दाशमिकक्रम और तत्संबंधी अंकगणितकी मूल प्रक्रियायें उस समय अच्छी तरह विदित थीं, और पीछेके गणितज्ञोंद्वारा उल्लिखित कुछ प्रकारके गणित प्रश्न ( problems ) भी ज्ञात थे।

यह पूर्व ही बताया जा चुका है कि आर्यभटीयमें प्राप्त गणितशास्त्र विशेष उन्नत है, क्योंकि उसमें हमको निम्न लिखित विषयोंका उल्लेख मिलता है— वर्तमानकालीन प्राथमिक

अंकगणितके सब भाग जिनमें अनुपात, विनिमय और व्याजके नियम भी सम्मिलित हैं, तथा सरल और वर्ग समीकरण, और सरल कुट्टक ( indeterminate equations ) की प्रक्रिया तकका बीजगणित भी है। अब प्रश्न यह उपस्थित होता है कि क्या आर्यभटने अपना गणितज्ञान विदेशसे ग्रहण किया, अथवा जो भी कुछ सामग्री आर्यभटीयमें अन्तर्हित है वह सब भारतवर्षकी ही मौलिक सम्पत्ति है ? आर्यभट लिखते हैं "ब्रह्म, पृथ्वी, चंद्र, बुध, शुक्र, सूर्य, मंगल, वृहस्पति, शनि और नक्षत्रोंको नमस्कार करके आर्यभट उस ज्ञानका वर्णन करता है जिसका कि यहां कुसुमपुरमें आदर है[1]।" इससे पता चलता है कि उसने विदेशसे कुछ ग्रहण नहीं किया। दूसरे देशोंके गणितशास्त्रके इतिहासके अध्ययनसे भी यही अनुमान होता है, क्योंकि आर्यभटीय गणित संसारके किसी भी देशके तत्कालीन गणितसे बहुत आगे बढा हुआ था। विदेशसे ग्रहण करनेकी संभावनाको इस प्रकार दूर कर देने पर प्रश्न उपस्थित होता है कि आर्यभटसे पूर्वकालीन गणितशास्त्रसंबंधी कोई ग्रंथ उपलब्ध क्यों नहीं है ? इस शंकाका निवारण सरल है। दाशमिकक्रमका आविष्कार ईसवी सन्के प्रारंभ कालके लगभग किसी समय हुआ था। इसे सामान्य प्रचारमें आनेके लिये चार पांच शताब्दियां लग गई होंगी। दाशमिकक्रमका प्रयोग करनेवाला आर्यभटका ग्रंथ ही सर्वप्रथम अच्छा ग्रंथ प्रतीत होता है। आर्यभटके ग्रंथसे पूर्वके ग्रंथोंमे या तो पुरानी संख्यापद्धतिका प्रयोग था, अथवा, वे समयकी कसौटी पर ठीक उतरने लायक अच्छे नहीं थे। गणितकी दृष्टिसे आर्यभटकी विस्तृत ख्यातिका कारण, मेरे मतानुसार, बहुतायतसे यही था कि उन्होंनें ही सर्वप्रथम एक अच्छा ग्रन्थ रचा, जिसमें दाशमिकक्रमका प्रयोग किया गया था। आर्यभटके ही कारण पुरानी पुस्तकें अप्रचलित और विलीन हो गई। इससे साफ पता चल जाता है कि सन् ४९९ के पश्चात् लिखी हुई तो हमें इतनी पुस्तकें मिलती हैं, किन्तु उसके पूर्वके कोई ग्रन्थ उपलब्ध नहीं हैं।

इस प्रकार सन् ५०० ईसवीके पूर्वके भारतीय गणितशास्त्रके विकास और उन्नतिका चित्रण करनेके लिये वास्तवमें कोई साधन हमारे पास नहीं है। ऐसी अवस्थामें आर्यभटसे पूर्वके भारतीय गणिज्ञानका बोध करानेवाले ग्रंथोंकी खोज करना एक विशेष महत्त्वपूर्ण कार्य हो जाता है। गणितशास्त्रसंबंधी ग्रन्थोंके नष्ट हो जानेके कारण सन् ५०० के पूर्वकालीन भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासका पुनः निर्माण करनेके लिये हमें हिंदुओं, बौद्धों और

---

१ ब्रम्हकुशशिबुधभृगुरविकुजगुरुकोणभगणान्नमस्कृत्य।
आर्यभटस्त्विह निगदति कुसुमपुरेऽभ्यर्चितं ज्ञानम् ॥ आर्यभटीय. २, १.
ब्रह्मभूमिनक्षत्रगणान्नमस्कृत्य कुसुमपुरे कुसुमपुराख्येऽस्मिन्देशे अभ्यर्चितं ज्ञानं कुसुमपुरवासिभिः पूजितं ग्रहगतिज्ञानसाधनभूतं [illegible]मार्यभटो निगदति। ( परमेश्वराचार्यकृत टीका )

जैनियोंके साहित्यकी, और विशेषतः धार्मिक साहित्यकी, छानबीन करना पड़ती है। अनेक पुराणोंमें हमें ऐसे भी खंड मिलते हैं जिनमें गणितशास्त्र और ज्योतिषविद्याका वर्णन पाया जाता है। इसी प्रकार जैनियोंके अधिकांश आगमग्रन्थोंमें भी गणितशास्त्र या ज्योतिषविद्याकी कुछ न कुछ सामग्री मिलती है। यही सामग्री भारतीय परम्परागत गणितकी द्योतक है, और वह इस ग्रन्थसे जिसमें वह अन्तर्भूत है, प्रायः तीन चार शताब्दियां पुरानी होंती है। अतः यदि हम सन् ४०० से ८०० तकको किसी धार्मिक या दर्शनिक कृतिकी परीक्षा करें तो उसका गणितशास्त्रीय विवरण ईसवीके प्रारंभसे सन् ४०० तकका माना जा सकता है।

उपर्युक्त निरूपणके प्रकाशमें ही हम इस नौवीं शताब्दीके प्रारंभकी रचना षट्खंडागमकी टीका धवलाकी खोजको अत्यन्त महत्त्वपूर्ण समझते हैं। श्रीयुत हीरालाल जैनने इस ग्रन्थका सम्पादन और प्रकाशन करके विद्वानोंको स्थायीरूपसे कृतज्ञतका ऋणी बना लिया है।

## गणितशास्त्रकी जैनशाखा

सन १९१२ में रंगाचार्यद्वारा गणितसारसंग्रहकी खोज और प्रकाशनके समयसे विद्वानोंको आभास होने लगा है कि गणितशास्त्रकी ऐसी भी एक शाखा रही है जो कि पूर्णतः जैन विद्वानोंद्वारा चलाई जाती थी। हालहीमें जैन आगमके कुछ ग्रन्थोंके अध्ययनसे जैन गणितज्ञ और गणितग्रन्थोंसंबंधी उल्लेखोंका पता चला है[२]। जैनियोंका धार्मिक साहित्य चार भागोंमें विभजित है जो अनुयोग, (जैनधर्मके) तत्त्वोंका स्पष्टीकरण, कहलाते हैं। इनमेंसे एकका नाम करणानुयोग या गणितानुयोग, अर्थात् गणितशास्त्रसंबंधी तत्त्वोंका स्पष्टीकरण, है। इसीसे पता चलता है कि जैनधर्म और जैनदर्शनमें गणितशास्त्रको कितना उच्च पद दिया गया है।

यद्यपि अनेक जैन गणितज्ञोंके नाम ज्ञात हैं, परंतु उनकी कृतियां लुप्त हो गई हैं। उनमें सबसे प्राचीन भद्रबाहु हैं जो कि ईसासे २७८ वर्ष पूर्व स्वर्ग सिधारे। वे ज्योतिष विद्या दो ग्रन्थोंके लेखक माने जाते हैं (१) सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीका; और (२) भद्रबाहवी संहिता नामक एक मौलिक ग्रंथ। मलयगिरि (लगभग ११५० ई.) ने अपनी सूर्यप्रज्ञप्तिकी टीकामें इनका उल्लेख किया है, और भट्टोत्पल[३] (९६५) ने उनके ग्रन्थावतरण दिये हैं। सिद्धसेन नामक एक दूसरे ज्योतिषीके ग्रन्थावतर वराहमिहिर (५०५) और भट्टोत्पल द्वारा दिये गये

---

१ देखो– रंगाचार्य द्वारा सम्पादित गणितसारसंग्रहकी प्रस्तावना, डी. ई. स्मिथद्वारा लिखित, मद्रास, १९१२.

२ बी. दत्त : गणितशास्त्रीय जैन शाखा, बुलेटिन कलकत्ता गणितसोसायटी, जिल्द २१ (१९१९), पृष्ठ ११५ से १४५.

३ बृहत्संहिता एस. द्विवेदीद्वारा सम्पादित, बनारस, १८९५, पृ. २२६.

हैं। अर्धमागधी और प्राकृत भाषामें लिखे हुए गणितसम्बधी उल्लेख अनेक ग्रन्थोंमें पाये जाते हैं। धवलामें इसप्रकारके बहुसंख्यक अवतरण विद्यमान हैं। इन अवतरणोंपर यथास्थान विचार किया जायगा। किन्तु यहां बात उल्लेखनीय है कि वे अवतरण निःसंशयरूपसे सिद्ध करते हैं कि जैन विद्वानोंद्वारा लिखे गये गणितग्रंथ थे जो कि अब लुप्त हो गये हैं[1]। क्षेत्र समास और करणभावनाके नामसे जैन विद्वानोद्वारा लिखित ग्रंथ गणितशास्त्रसम्बधी ही थे। पर अब हमें ऐसे कोई ग्रंथ प्राप्य नहीं हैं। हमारा जैन गणितशास्त्रसम्बन्धी अत्यन्त खंडित ज्ञान स्थानांग सूत्र, उमास्वातिकृत तत्वार्थाधिगमसूत्रभाष्य, सूर्यप्रज्ञप्ति, अनुयोगद्वारसूत्र, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, त्रिलोकसार आदि गणितेतर ग्रन्थोंसे संकलित है। अब इन ग्रन्थोंमें धवलाका नाम भी जोडा जा सकता है।

## धवलाका महत्त्व

धवला नौवीं सदीके प्रारंभमें वीरसेन द्वारा लिखी गई थी। वीरसेन तत्तज्ञानी और धार्मिक दिव्यपुरुष थे। वे वस्तुतः गणितज्ञ नहीं थें। अतः जो गणितशास्त्रीयसामग्री धवलाके अन्तर्गत है, वह उनसे पूर्ववर्ती लेखकोंकी कृति कही जा सकती है, और मुख्यतया पूर्वगत टीकाकारोंकी, जिनमेंसे पांचका इन्द्रनन्दीने अपने श्रुतावतारमें उल्लेख किया हैं। ये टीकाकार **कुंदकुंद, शामकुंद, तुंबुलूर, समन्तभद्र और बप्पदेव** थे, जिनमेंसे प्रथम लगभग सन् २०० के और अन्तिम सन् ६०० के लगभग हुए। अतः धवलाकी अधिकांश गणितशास्त्रीयसामग्री सन् २०० से ६०० तकके बीचके समयकी मानी जा सकती है। इस प्रकार भारतवर्षीय गणितशास्त्रके इतिहासकारोंके लिये धवला प्रथम श्रेणीका महत्वपूर्ण ग्रंथ हो जाता है, क्योंकि उसमें हमें भारतीय गणितशास्त्रके इतिहासके सबसे अधिक अंधकारपूर्ण समय, अर्थात् पांचवी शताब्दीसे पूर्वकी बातें मिलती हैं। विशेष अध्ययनसे यह बात और भी पुष्ट हो जाती है कि धवलाकी गणितशास्त्रीय सामग्री सन् ५०० से पूर्वकी है। उदाहरणार्थ– धवलामें वर्णित अनेक प्रक्रियायें किसी भी अन्य ज्ञात ग्रंथमें नहीं पाई जातीं, तथा इसमें कुछ ऐसी स्थलताका आभास भी है जिसकी झलक पश्चात्के भारतीय गणितशास्त्रसे परिचित विद्वानोंको सरलतासे मिल सकती है। धवलाके गणितभागमें वह परिपूर्णता है परिष्कार नहीं है जो आर्यभटीय और उसके पश्चात्के ग्रंथोंमें है।

## धवलान्तर्गत गणितशास्त्र

**संख्याएं और संकेत**–धवलाकार दाशमिकक्रमसे पूर्णतः परिचित हैं। इसके प्रमाण

---

१ शीलांकने सूत्रकृतांगसूत्र, स्मयाध्ययन अनुयोगद्वार, श्लोक २८, पर अपनी टीकामें भंगसंबंधी ( regarding permutation and combinations ) तीन नियम उद्धृत किये हैं। ये नियम किसी जैन गणित ग्रंथमेंसे लिये गये जान पडते है।

**सर्वत्र उपलब्ध होते हैं । हम यहां धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंसे ली गई संख्याओंको व्यक्त करनेकी कुछ पद्धतियोंको उपस्थित करते हैं–**

(१) ७९९९९९९८ को ऐसी संख्या कहा है कि जिसके आदिमें ७, अन्तमें ८ और मध्यमें छह वार ९ की पुनरावृत्ति हैं[1] ।

(२) ४६६६६६६४ व्यक्त किया गया है– चौसठ, छह सौ, छयासठ हजार, छयासठ लाख, और चार करोड[2] ।

(३) २२७९९४९८ व्यक्त किया गया है– दो करोड, सत्ताइस, निन्यान्नवे हजार, चारसौ और अन्ठान्नवे[3] ।

इनमेंसे (१) में जिस पद्धतिका उपयोग किया है वह जैन साहित्यमें अन्य स्थानोंम भी पायी जाती है, और गणितसारसंग्रहमें[4] भी कुछ स्थानोंमें है । उससे दाशमिकक्रमका सुपरिचय सिद्ध होता है । (२) में छोटी संख्याएं पहले व्यक्त की गई है । यह संस्कृत साहित्यमें प्रचलित साधारण रीतिके अनुसार नहीं है । उसी प्रकार यहां संकेत-क्रम सौ है, न कि दश जो कि साधारणतः संस्कृत साहित्यमें पाया जाता है[5] । किन्तु पाली और प्राकृतमें सौ का क्रम ही प्रायः उपयोगमें लाया गया है । (३) में सबसे बडी संख्या पहले व्यक्त की गई है । अवतरण (२) और (३) स्पष्टतः भिन्न स्थानोंसे लिये गये हैं ।

**बडी संख्यायें–** यह सुविदित है कि जैन साहित्यमें बडी संख्यायें बहुतायतसे उपयोगमें आई हैं । धवलामें भी अनेक तरहकी जीवराशियों ( द्रव्यप्रमाण ) आदि पर तर्क वितर्क है । निश्चितरूपसे लिखी गई सबसे बडी संख्या पर्याप्त मनुष्योंकी है । यह संख्या धवलामें[6] दो के छठे वर्ग और दो के सातवें वर्गके बीचकी, अथवा और भी निश्चित, कोटि-कोटि-कोटि और कोटि-कोटि-कोटि-कोटिके बीचकी कही गई है । याने–

$२^{२^{६}}$ और $२^{२^{७}}$ के बीचकी । अथवा, और अधिक नियत-$(१,००,००,०००)^{३}$ और $(१,००,००,०००)^{४}$ के बीचकी । अथवा, सर्वथा निश्चित- $२^{२^{५}} \times २^{२^{६}}$ । इन जीवोंकी संख्या अन्य मतानुसार[7] ७९२२८१६२५१४२६४३३७५९३५४३९५०३३६ है ।

---

१. ध. भाग ३, पृष्ठ ९८, गाथा ५१ । देखो गोम्मटसार, जीवकांड, पृष्ट ६३३.

२. ध. भाग ३, पृ ९९, गाथा ५२.

३ ध. भाग ३, पृ. १००, गाथा ५३.

४ देखो-गणितसारसंग्रह १, २७. और भी देखो- दत्त और सिंहका हिन्दूगणितशास्त्रका इतिहास, जिल्द १, लाहौर १९३५, पृ १६.

५ दत्त और सिंह, पूर्ववत्, पृ १४.

६ ध. भाग ३, पृ. २५३

७ गोम्मटसार, जीवकांड, ( से. बु. जै. सीरीज ) पृ.१०४.

यह संख्या उन्तीस अंक ग्रहण करती है। इसमें भी उतने ही स्थान हैं जितने कि ( १,००,००,००० )[४] में, परन्तु है वह उससे बडी संख्या। यह बात धवलाकारको ज्ञात है, और उन्होंने मनुष्यक्षेत्रका क्षेत्रफल निकालकर यह सिद्ध किया है कि उक्त संख्याके मनुष्य मनुष्यक्षेत्रमें नही समा सकते, और इसलिये उस संख्यावाला मत ठीक नहीं है।

## मौलिक प्रक्रियायें

धवलामें जोड, बाकी, गुणा, भाग, वर्गमूल और घनमूल निकालना, तथा संख्याओंका घात निकालना (The raising of numbers to given powers) आदि मौलिक प्रक्रियाओंका कथन उपलब्ध है। ये क्रियाएं पूर्णांक और भिन्न, दोनोंके संबंधमें कही गई हैं। धवलमें वर्णित घातांकका सिद्धान्त ( Theory of indices ) दूसरे गणित ग्रंथोंसे कुछ कुछ भिन्न है। निश्चयतः यह सिद्धान्त प्राथमिक है, और सन् ५०० से पूर्वका है। इस सिद्धान्तसंबंधी मौलिक विचार निम्नलिखित प्रक्रियाओंके आधारपर प्रतीत होते हैं:— (१) वर्ग, (२) घन, (३) उत्तरोत्तर वर्ग, (४) उत्तरोत्तर घन, (५) किसी संख्याका संख्यातुल्य घात निकालना ( The raising of numbers to their own power ), (६) वर्गमूल, (७) घनमूल, (८) उत्तरोत्तर वर्गमूल, (९) उत्तरोत्तर घनमूल, आदि। अन्य सब घातांक इन्हीं रूपोंमें प्रगट किये गये हैं।

**उदाहरणार्थ**—$अ^{\frac{3}{2}}$ को अ के घनका प्रथम वर्गमूल कहा है। $अ^{९}$ को अ का घनका घन कहा है। $अ^{६}$ को अ के घनका वर्ग, या वर्गका घन कहा है, इत्यादि[१]। उत्तरोत्तर वर्ग और घनमूल नीचे लिखे अनुसार हैं—

अ का प्रथम वर्ग याने $(अ)^{२} = अ^{२}$

,, द्वितीय वर्ग ,, $(अ^{२})^{२} = अ^{४} = अ^{२^{२}}$

,, तृतीय वर्ग ,, $अ^{२^{३}}$

,, न वर्ग ,, $अ^{२^{न}}$

उसी प्रकार— अ का प्रथम वर्गमूल याने $अ^{\frac{१}{२}}$

,, द्वितीय ,, ,, $अ^{\left(\frac{१}{२}\right)^{२}}$

,, तृतीय ,, ,, $अ^{\left(\frac{१}{२}\right)^{३}}$

,, न ,, ,, $अ^{\left(\frac{१}{२}\right)^{न}}$

---

१ धवला, भाग ३ पृष्ठ, ५३.

## वर्गित–संवर्गित

परिभाषिक शब्द वर्गित-संवर्गितका प्रयोग किसी संख्याका संख्यातुल्य घात करनेके अर्थमें किया गया है।

**उदाहरणार्थ**—$न^{न}$ न का वर्गितसंवर्गितरूप है।

इस सम्बन्धमें धवलामें विरलन-देय 'फैलाना और देना' नामक प्रक्रियाका उल्लेख आया है। किसी संख्याका '**विरलन**' करना व फैलाना अर्थात् उस संख्याको एकएकमें अलग करना है। जैसे, न के विरलनका अर्थ है—

१ १ १ १ १ ........ न वार

'**देय**' का अर्थ है उपर्युक्त अंकोंमें प्रत्येक स्थान पर एकको जगह न ( विवक्षित संख्या ) को रख देना। फिर उस विरलन-देयसे उपलब्ध संख्याओंको परस्पर गुणा कर देनेसे उस संख्याका वर्गित-संवर्गित प्राप्त हो जाता है, और यही उस संख्याका प्रथम वर्गित-संवर्गित कहलाता है। जैसे, न का प्रथम वर्गित-संवर्गित $न^{न}$।

विरलन-देयकी एकवार पुनः प्रक्रिया करनेसे, अर्थात् $न^{न}$ को लेकर वही विधान फिर करनेसे, द्वितीय वर्गित-संवर्गित $(न^{न})^{न^{न}}$ प्राप्त होता है। इसी विधानको पुनः एकवार करनेसे न का तृतीय वर्गित-संवर्गित $\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}^{\left\{(न^{न})^{न^{न}}\right\}}$ प्राप्त होता है।

धवलामें उक्त प्रक्रियाका प्रयोग तीन वारसे अधिक अपेक्षित नहीं हुआ है। किन्तु, तृतीय वर्गितसंवर्गितका उल्लेख अनेकवार[1] बडी संख्याओं व असंख्यात व अनन्तके संबंधमें किया गया है। इस प्रक्रियासे कितनी संख्या प्राप्त होती है, इसका ज्ञान इस बातसे हो सकता है कि २ का तृतीयवार वर्गितसंवर्गित रूप $२५६^{२५६}$ हो जाता है।

## घातांक सिद्धान्त

उपर्युक्त कथनसे स्पष्ट है कि धवलाकार घातांक सिद्धान्तसे पूर्णतः परिचित थे। जैसे—

( १ ) $अ^{म} . अ^{न} = अ^{म+न}$

( २ ) $अ^{म} / अ^{न} = अ^{म-न}$

( ३ ) $(अ^{म})^{न} = अ^{मन}$

---

१ धवला, भाग ३, पृ. २० आदि.

उक्त सिद्धान्तोंके प्रयोगसंबंधी उदाहरण धवलामें अनेक हैं। एक रोचक उदाहरण निम्न प्रकारका है[1]– कहा गया है कि २ के ७ वें वर्गमें २ के छठवें वर्गका भाग देनेसे २ का छठवां वर्ग लब्ध आता है। अर्थात्–

$$२^{२^{७}} / २^{२^{६}} = २^{२^{६}}$$

जब दाशमिकक्रमका ज्ञान नहीं हो पाया तब द्विगुणक्रम और अर्धक्रमकी प्रक्रियाएं ( The operations of duplation and mediation ) महत्वपूर्ण समझी जाती थीं। भारतीय गणितशास्त्रके ग्रंथोंमें इन प्रक्रियाओंका कोई चिन्ह नहीं मिलता। किन्तु इन प्रक्रियाओंको मिश्र और यूनानके निवासी महत्वपूर्ण गिनते थे, और उनके अंकगणितसंबंधी ग्रंथोंमें वे तदनुसार स्वीकार की जाती थीं। धवलामें इन प्रक्रियाओंके चिन्ह मिलते हैं। दो या अन्य संख्याओंके उत्तरोत्तर वर्गीकरणका विचार निश्चयत: द्विगुणक्रमकी प्रक्रियासे ही परिस्फुटित हुआ होगा, और यह द्विगुणक्रमकी प्रक्रिया दाशमिकक्रमके प्रचारसे पूर्व भारतवर्षमें अवश्य प्रचलित रही होगी। उसी प्रकार अर्धक्रम पद्धतिका भी पता चलता है। धवलामें इस प्रक्रियाको हम २, ३, ४ आदि आधारवाले लघुरिक्थ सिद्धान्तमें साधारणीकृत पाते हैं।

## लघुरिक्थ ( Logarithm )

धवलामें निम्न पारिभाषिक शब्दोंके लक्षण पाये जाते हैं[2]–

(१) **अर्धच्छेद–** जितनी वार एक संख्या उत्तरोत्तर आधी आधी की जा सकता है, उतने उस संख्याके अर्धच्छेद कहे जाते हैं जैसे– $२^{म}$ के अर्धच्छेद = म

अर्धच्छेदका संकेत अछे मान कर हम इसे आधुनिक पद्धतिमें इस प्रकार रख सकते हैं–

क का अछे ( या अछे क ) = लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(२) **वर्गशलाका–** किसी संख्याके अर्द्धच्छेदोंके उस संख्याकी वर्गशलाका होती है। जैसे– क की वर्गशलाका = वश क = अछे अछे क = लरि लरि क। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(३) **त्रिकच्छेद**[3]– जितने वार एक संख्या उत्तरोत्तर ३ से विभाजित की जाती है, उतने उस संख्याके त्रिकच्छेद होते हैं। जैसे– क के त्रिकच्छेद = त्रिछे क = लरि ३क। यहां लघुरिक्थका आधार ३ है।

---

१ धवला भाग ३, पृ. २५३ आदि. २ धवला भाग ३, पृ. २१ आदि.
३ धवला भाग ३, पृ. ५६.

(४) **चतुर्थच्छेद**[१]— जितने वार एक संख्या उत्तरोत्तर ४ से विभाजित की जा सकती है, उतने उस संख्यासे चतुर्थच्छेद होते हैं। जैसे– क के चतुर्थच्छेद = चछे क = लरि ४ क। यहां लघुरिक्थका आधार ४ है।

धवलामें लघुरिक्थसंबंधी निम्न परिणामोंका उपयोग किया गया है—

(१)[२] लरि (म/न) = लरि म – लरि न

(२) लरि (म. न) = लरि म + लरि न

(३)[३] $२^{\text{लरि म}}$ = म। यहां लघुरिक्थका आधार २ है।

(४)[४] लरि $(क^{क})^{२}$ = २ क लरि क

(५)[५] लरि लरि $(क^{क})^{२}$ = लरि क + १ + लरि लरि क,

(बाई ओर) = लरि (२ क लरि क)

= लरि क + लरि २ + लरि लरि क

= लरि क + १ + लरि लरि क।

चूंकि लरि २ = १, जब कि आधार २ है।

(६)[६] लरि $(क^{क})^{क^{क}}$ = $क^{क}$ लरि $क^{क}$

(७) मानलो अ एक संख्या है, तो—

अ का प्रथम वर्गित-संवर्गित = $अ^{अ}$ = ब (मानलो)

,, द्वितीय ,, = $ब^{ब}$ = भ ,,

,, तृतीय ,, = $भ^{भ}$ = म ,,

धवलामें निम्न परिणाम दिये गये हैं[७]—

(क) लरि ब = अ लरि अ

(ख) लरि लरि ब = लरि अ + लरि लरि अ

(ग) लरि भ = ब लरि ब

---

१ धवला, भाग ३, पृ. ५६. २ धवला, भाग ३, पृ. ६०. ३ धवला, भाग ३, पृ. ५५.
४ धवला, भाग ३, पृ. २१ आदि. ५ पूर्ववत्.
६ पूर्ववत्। यहां यह बात उल्लेखनीय है कि ग्रंथमें ये लघुरिक्थ पूर्णांकों तक ही परिमित नहीं हैं। संख्या क कोई भी संख्या हो सकती है। $क^{क}$ प्रथम वर्गितसंवर्गित राशि और $(क^{क})^{क^{क}}$ द्वितीय वर्गित-संवर्गित राशि है। ७ धवला, भाग ३, पृ. २१–२४.

( घ ) लरि लरि भ = लरि ब + लरि लरि ब

= लरि अ + लरि लरि अ + अ लरि अ

( ङ ) लरि म = भ·लरि भ

( च ) लरि लरि म = लरि भ + लरि लरि भ । इत्यादि

(८)[1] लरि लरि म < ब[2]

इस असाम्यतासे निम्न असाम्यता आती है---

ब लरि ब + लरि ब + लरि लरि ब < ब[2]

**भिन्न**--- अंकगणितमें भिन्नोंकी मौलीक प्रक्रियाओं, जिनका ज्ञान धवलामें ग्रहण कर लिया गया है, के अतिरिक्त यहां हम भिन्नसंबंधी अनेक ऐसे रोचक सूत्र पाते हैं जो अन्य किसी गणितसंबंधी ज्ञात ग्रन्थमें नहीं मिलते । इनमें निम्न लिखित उल्लेखनीय हैं---

(१)[2] $$\frac{न^2}{न \pm (न/प)} = न \mp \frac{न}{प \pm १}$$

(२)[3] मान लो कि किसी एक संख्या म में द, द' ऐसे दो भाजकों का भाग दिया गया और उनसे क्रमशः क और क' ये दो लब्ध ( या भिन्न ) उत्पन्न हुए । निम्न लिखित सूत्रमें म के द ± द' से भाग देने का परिणाम दिया गया है---

$$\frac{म}{द \pm द'} = \frac{क'}{(क'/क) \pm १}$$

$$\text{अथवा} = \frac{क}{१ \pm (क/क')}$$

(३)[4] यदि $\frac{म}{द} = क$, और $\frac{म'}{द} = क'$, तो--- $द\,(क - क') + म' = म$

(४)[5] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, तो--- $\dfrac{अ}{ब + \frac{ब}{न}} = क - \dfrac{क}{न + १}$ ;

---

१ धवला, भाग ३, पृ. २४.

२ धवला, भाग ३, पृ. ४६.

३ धवला, भाग ३, पृ. ४६.

४ धवला, भाग ३, पृ. ४७, गाथा २७.

५ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.

और $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \frac{\text{ब}}{\text{न}}} = \text{क} + \frac{\text{क}}{\text{न} - १}$$

( ५ )[1] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, तो– $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{स}} = \text{क} - \frac{\text{क}}{\frac{\text{ब}}{\text{स}} + १};$$

और $$\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \text{स}} = \text{क} + \frac{\text{क}}{\frac{\text{ब}}{\text{स}} - १}$$

( ६ )[2] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} + \text{स}$, तो–

$$\text{ब}' = \text{ब} - \frac{\text{ब}}{\frac{\text{क}}{\text{स}} + १}$$

और यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} - \text{स}$, तो –– $\text{ब}' = \text{ब} + \frac{\text{ब}}{\frac{\text{क}}{\text{स}} - १}$

( ७ )[3] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} - \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब}'}$ दूसरा भिन्न है, तो––

$$\frac{\text{अ}}{\text{ब}} - \frac{\text{अ}}{\text{ब}'} = \text{क} \left(\frac{\text{ब}' - \text{ब}}{\text{ब}'}\right)$$

( ८ )[4] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{ख}} = \text{क} - \text{स}$, तो–– $\text{ख} = \frac{\text{ब}\,\text{स}}{\text{क} - \text{स}}$

( ९ )[5] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} - \text{ख}} = \text{क} + \text{स}$, तो– $\text{ख} = \frac{\text{ब}\,\text{स}}{\text{क} + \text{स}}$

( १० )[6] यदि $\frac{\text{अ}}{\text{ब}} = \text{क}$, और $\frac{\text{अ}}{\text{ब} + \text{स}} = \text{क}'$, तो– $\text{क}' = \text{क} - \frac{\text{क}\,\text{स}}{\text{ब} + \text{स}}$

---

१ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २४.
२ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २५.
३ भाग ३, पृ. ४६, गाथा २८.
४ भाग ३, पृ. ४८, गाथा २९.
५ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३०.
६ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३१.

( ११ )[1] यदि $\frac{अ}{ब} = क$, और $\frac{अ}{ब - स} = क'$, तो- $क' = क + \frac{क स}{ब - स}$

ये सब परिणाम धवलाके अन्तर्गत अवतरणोंमें पाये जाते हैं। वे किसी भी गणित-संबंधी ज्ञात ग्रंथमें नहीं मिलते। ये अवतरण अर्धमागधी अथवा प्राकृत ग्रंथोंके हैं। अनुमान यही होता है कि वे सब किन्हीं गणितसंबंधी जैन ग्रन्थोंसे, अथवा पूर्ववर्ती टीकाओंसे लिये गये हैं। वे अंकगणितकी किसी सारभूत प्रक्रियाका निरूपण नहीं करते। वे उस कालके स्मारकावशेष हैं जब कि भाग एक कठिन और श्रमसाध्य विधान समझा जाता था। ये नियम निश्चयतः उस काल के हैं जब कि दाशमिक-क्रमका अंकगणितकी प्रक्रियाओंमें उपयोग सुप्रचलित नहीं हुआ था।

**त्रैराशिक**— त्रैराशिक क्रियाका धवलामें अनेक स्थानों पर उल्लेख और उपयोग किया गया है[2]। इस प्रक्रियासंबंधी पारिभाषिक शब्द हैं— फल, इच्छा और प्रमाण— ठीक वही जो ज्ञात ग्रंथोंमें मिलते हैं। इससे अनुमान होता है कि त्रैराशिक क्रियाका ज्ञान और व्यवहार भारतवर्षमें दाशमिक क्रमके आविष्कारसे पूर्व भी वर्तमान था।

## अनन्त

**बडी संख्याओंका प्रयोग**—'अनन्त' शब्दका विविध अर्थोंमें प्रयोग सभी प्राचीन जातियोंके साहित्यमें पाया जाता है। किन्तु उसकी ठीक परिभाषा और समझदारी बहुत पीछे आई। यह स्वाभाविक ही है कि अनन्तकी ठीक परिभाषा उन्हीं लोगोंद्वारा विकसित हुई जो बडी संख्याओंका प्रयोग करते थे, या अपने दर्शनशास्त्रमें ऐसी संख्याओंके अभ्यस्त थे। निम्न विवेचनसे यह प्रकट हो जायगा कि भारतवर्षमें जैन दार्शनिक अनन्तसे संबंध रखनेवाली विविध भावनाओंको श्रेणीबद्ध करने तथा गणनासंबंधी अनन्तकी ठीक परिभाषा निकालनेमें सफल हुए।

बडी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये उचित संकेतोंका तथा अनन्तकी कल्पनाका विकास तभी होता है जब निगूढ़ तर्क और विचार एक विशेष उच्च श्रेणीपर पहुंच जाते हैं। यूरोपमें आर्किमिडीजने समुद्र-तटकी रेतके कणोंके प्रमाणके अंदाज लगानेका प्रयत्न किया था और यूनानके दार्शनिकोंने अनन्त एवं सीमा ( limit ) के विषयमें विचार किया था। किन्तु उनके पास बडी संख्याओंको व्यक्त करनेके योग्य संकेत नहीं थे। भारतवर्षमें हिन्दू, जैन और बौद्ध दार्शनिकोंने बहुत बडी संख्याओंका प्रयोग किया और उस कार्यके लिये उन्होंने उचित संकेतोंका

---

१ भाग ३, पृ. ४९, गाथा ३२.

२ धवला भाग ३, पृ. ६९ और १०० आदि.

भी आविष्कार किया। विशेषतः जैनियोंने लोकभरके समस्त जीवों, काल-प्रदेशों और क्षेत्र अथवा आकाश-प्रदेशों आदिके प्रमाणका निरूपण करनेका प्रयत्न किया है।

बडी **संख्यायें** व्यक्त करनेके तीन प्रकार उपयोगमें लाये गये—

( १ ) **दाशमिक-क्रम** ( Place-value notation )— जिसमें दशमानका उपयोग किया गया। इस संबंधमें यह बात उल्लेखनीय है कि दशमानके[1] आधारपर $१०^{१४०}$ जैसी बडी संख्याओंको व्यक्त करनेवाले नाम कल्पित किये गये।

( २ ) **घातांक नियम** ( Law of indices वर्ग-संवर्ग ) का उपयोग बडी संख्याओंको सूक्ष्मतासे व्यक्त करनेके लिये किया गया। जैसे—

( अ ) $२^{२} = ४$

( ब ) $(२^{२})^{२^{२}} = ४^{४} = २५६$

( स ) $\left\{ (२^{२})^{२^{२}} \right\}^{\left\{ (२^{२})^{२^{२}} \right\}} = २५६^{२५६}$

जिसको २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित कहा है। यह संख्या समस्त विश्व ( universe ) के विद्युत्कणों ( protons and electrons ) की संख्यासे बडी है।

( ३ ) **लघुरिक्थ** ( अर्धच्छेद ) अथवा लघुरिक्थके लघुरिक्थ ( अर्धच्छेदशलाका ) का उपयोग बडी संख्याओंके विचारको छोटी संख्याओंके विचारमें उतारने लिये किया गया। जैसे—

( अ ) $लरि_{२}\ २^{२} = २$

( ब ) $लरि_{२}\ लरि_{२}\ ४^{४} = ३$

( स ) $लरि_{२}\ लरि_{२}\ २५६^{२५६} = ११$

इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि आज भी संख्याओंको व्यक्त करनेके लिये हम उपर्युक्त तीन प्रकारोंमेंसे किसी एक प्रकारका उपयोग करते हैं। दाशमिकक्रम समस्त देशोंकी साधारण सम्पत्ति बन गई है। जहां बडी संख्याओंका गणित करना पडता है, वहां लघुरिक्थोंका उपयोग किया जाता है। आधुनिक पदार्थविज्ञानमें परिमाणों ( magnitudes ) को व्यक्त करनेके

---

१ बडी संख्याओं तथा संख्या-नामोंके संबंधमें विशेष जाननेके लिये देखिये दत्त और सिंह कृत हिन्दू गणितशास्त्रका इतिहास ( History of Hindu Mathematics ), मोतीलाल बनारसीदास, लाहौर, द्वारा प्रकाशित, भाग १, पृ. ११ आदि.

लिये घातांक नियमोंका उपयोग सर्वसाधारण है। उदाहरणार्थ– विश्वभरके विद्युत्कणोंकी गणना[1] करके उसकी व्यक्ति इस प्रकार की गई है— $१३६ \cdot २^{२५६}$ तथा, रूढ संख्याओंके विकलन ( distribution of primes ) को सूचित करनेवाली स्क्यूज संख्या ( Skewes' number ) निम्न प्रकारसे व्यक्त की जाती है–

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$

संख्याओंको व्यक्त करनेवाले उपर्युक्त समस्त प्रकारोंका उपयोग धवलामें किया गया है। इससे स्पष्ट है कि भारतवर्षमें उन प्रकारोंका ज्ञान सातवीं शतब्दिसे पूर्व ही सर्व-साधारण हो गया था।

## अनन्तका वर्गीकरण

धवलामें अनन्तका वर्गीकरण पाया जाता है। साहित्यमें अनन्त शब्दका उपयोग अनेक अर्थोंमें हुआ है। जैन वर्गीकरणमें उन सबका ध्यान रखा गया है जैन वर्गीकरणके अनुसार अनन्तके ग्यारह प्रकार हैं। जैसे–

**( १ ) नामानन्त**[2]— नामका अनन्त। किसी भी वस्तु-समुदायके यथार्थतः अनन्त होने या न होनेका विचार किये विना ही केवल उसका बहुत्व प्रगट करनेके लिये साधारण बोलचालमें अथवा अबोध मनुष्यों द्वारा या उनके लिये, अथवा साहित्यमें, उसे अनन्त कह दिया जाता है। ऐसी अवस्थामें ' अनन्त ' शब्दका अर्थ नाममात्रका अनन्त है। इसे ही नामानन्त कहते हैं।

---

१ संख्या $१३६ \cdot २^{२५६}$ को दाशमिक-क्रमसे व्यक्त करने पर जो रूप प्रकट होता है वह इस प्रकार है– १५,७४७,७२४,१३६,२७५,००२,५७७,६०५,६५३,९६१,१८१,५५५,४६८,०४४,७१७,९१४,५७२,११६, ७०९,३६६,२३१,४२५,०७६,१८५,६३१,०३१,२९६,

इससे देखा जा सकता है कि २ का तृतीय वर्गित-संवर्गित अर्थात् $२५६^{२५६}$ विश्वभरके समस्त विद्युत्कणोंकी संख्यासे अधिक होता है। यदि हम समस्त विश्वको एक शतरंजका फलक मान ले और विद्युत्कणोंको उसकी गोटियां, और दो विद्युत्कणोंकी किसी भी परिवृत्तिको इस विश्वके खेलकी एक ' चाल ' मान लें, तो समस्त संभव ' चालों ' की संख्या—

$$१०^{१०^{१०^{३४}}}$$ होगी।

यह संख्या रूढ संख्याओं ( primes ) के विभाग ( distribution ) से भी संबंध रखती है।

२ जीवाजीवमिस्सदव्वस्स कारणणिरवेक्खा सण्णा अनंता। धवला ३, पृ. ११.

**(२) स्थापनानन्त**[१]— आरोपित या आनुषंगिक, या स्थापित अनन्त। यह भी यथार्थ अनन्त नहीं है। जहां किसी वस्तुमें अनन्तका आरोपण कर लिया जाता है वहां इन शब्दका प्रयोग किया जाता है।

**(३) द्रव्यानन्त**[२]— तत्काल उपयोगमें न आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उन पुरुषोंके लिये किया जाता है जिहें अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है, जिसका वर्तमानमें उपयोग नहीं है।

**(४) गणनानन्त** संख्यात्मक अनन्त। यह संज्ञा गणितशास्त्रमें प्रयुक्त वास्तविक अनन्तके अर्थमें आई है।

**(५) अप्रदेशिकानन्त** परिमाणहीन अर्थात् अत्यन्त अल्प परमाणुरूप।

**(६) एकानन्त**— एकदिशात्मक अनन्त। यह वह अनन्त है जो एक दिशामें सीधी एक रेखारूपसे देखनेमें प्रतीत होता है।

**(७) विस्तारानन्त**— द्विविस्तारात्मक अथवा पृष्ठदेशीय अनन्त। इसका अर्थ है प्रतरात्मक अनन्ताकाश।

**(८) उभयानन्त**— द्विदिशात्मक अनन्त। इसका उदाहरण है एक सीधी रेखा जो दोनों दिशाओंमें अनन्त तक जाती है

**(९) सर्वानन्त**— आकाशात्मक अनन्त। इसका अर्थ है त्रिधा-विस्तृत अनन्त अर्थात् घनाकार अनन्ताकाश।

**(१०) भावानन्त**— तत्काल उपयोगमें आते हुए ज्ञानकी अपेक्षा अनन्त। इस संज्ञाका उपयोग उस पुरुषके लिये किया जाता है जिसे अनन्त-विषयक शास्त्रका ज्ञान है और जिसका उस ओर उपयोग है।

**(११) शाश्वतानन्त**— नित्यस्थायी या अविनाशी अनन्त।

पूर्वोक्त वर्गीकरण खूब व्यापक है जिसमें उन सब अर्थोंका समावेश हो गया है जिन अर्थोंमें कि 'अनन्त' संज्ञाका प्रयोग जैन साहित्यमें हुआ है।

---

१ जं तं ट्ठवणाणंतं णाम तं कट्ठकम्मेसु वा चित्तकम्मेसु वा पोत्तकम्मेसु वा........अक्खो वा वराडयो वा जे च अण्णे ट्ठवणाए ट्ठविदा अणंतमिदि तं सव्वं ट्ठवणाणंतं णाम। ध. ३, पृ. ११ से १२.

२ जं तं दव्वाणंतं तं दुविहं आगमदो णोआगमदो य। ध. ३, पृ. १२.

## गणानानन्त ( Numerical infinite )

धवलामें यह स्पष्टरूपसे कह दिया गया है कि प्रकृतमें अनन्त संज्ञाका प्रयोग[1] गणनानन्तके अर्थमें ही किया गया है, अन्य अनन्तोंके अर्थमें नहीं,, 'क्योंकि उन अन्य अनन्तोंके द्वारा प्रमाणका प्ररूपण नहीं पाया जाता'[2]। यह भी कहा गया है कि 'गणनानन्त बहुवर्णनीय और सुगम है'[3]। इस कथनका अर्थ संभवतः यह है कि जैन-साहित्यमें अनन्त अर्थात् गणनानन्तकी परिभाषा अधिक विशदरूपसे भिन्न भिन्न लेखकों द्वारा कर दी गई थी, तथा उसका प्रयोग और ज्ञान भी सुप्रचलित हो गया था। किन्तु धवलामें अनन्तकी परिभाषा नहीं दी गई। तो भी अनन्तसंबंधी प्रक्रियाएं संख्यात और असंख्यात नामक प्रमाणोंके साथ साथ बहुत वार उल्लिखित हुई हैं।

संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रमाणोंका उपयोग जैन सहित्यमें प्राचीनतम ज्ञातकालसे किया गया है। किन्तु प्रतीत होता है कि उनका अभिप्राय सदैव एकसा नहीं रहा। प्राचीनतर ग्रंथोंमें अनन्त सचमुच अनन्तके उसी अर्थमें प्रयुक्त हुआ था जिस अर्थमें हम अब उसकी परिभाषा करते हैं। किन्तु पीछेके ग्रंथोंमें उसका स्थान अनन्तानन्तने ले लिया। उदाहरणार्थ– नेमिचंद्र द्वारा दशवी शताब्दिमें लिखित ग्रंथ त्रिलोकसारके अनुसार परीतानन्त, युक्तानन्त एवं जघन्य अनन्तानन्त एक बडी भारी संख्या है, किन्तु है वह सान्त। उस ग्रंथके अनुसार संख्याओंके तीन मुख्य भेद किये जा सकते हैं––

( १ ) **संख्यात**––जिसका संकेत हम **स** मान लेते हैं।

( २ ) **असंख्यात**––जिसका संकेत हम **अ** मान लेते हैं।

( ३ ) **अनन्त**––जिसका संकेत हम **न** मान लेते हैं।

उपर्युक्त तीनों प्रकारके संख्या-प्रमाणोंके पुनः तीन तीन प्रभेद किये गये हैं जो निम्न प्रकार हैं–

(१) **संख्यात**–– ( गणनीय ) संख्याओंके तीन भेद हैं––

( अ ) जघन्य-संख्यात ( अल्पतम संख्या ) जिसका संकेत हम **स ज** मान लेते हैं।

( ब ) मध्य-संख्यात ( बीचकी संख्या ) जिसका संकेत हम **स म** मान लेते हैं।

---

१ धवला ३, पृ. १६.

२ 'ण च सेसअणंताणि पमाणपरूवणाणि, तत्थ तधादंसणादो'। ध. ३, पृ. १७.

३ 'जं तं गणणाणंतं तं बहुवण्णणीयं सुगमं च'। ध. ३, पृ. १६.

(स) उत्कृष्ट-संख्यात ( सबसे बडी संख्या ) जिसका संकेत हम स उ मान लेते हैं ।

(२) **असंख्यात** ( अगणनीय ) के भी तीन भेद हैं---

( अ ) परीत-असंख्यात ( प्रथम श्रेणीका असंख्य ) जिसका संकेत हम अ प मान लेते हैं ।

( ब ) युक्त-असंख्यात ( बीचका असंख्य ) जिसका संकेत हम अ यु मान लेते हैं ।

( स ) असंख्यातासंख्यात ( असंख्य-असंख्य ) जिसका संकेत हम अ अ मान लेते हैं ।

पूर्वोक्त इन तीनों भेदोंमेंसे प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होने हैं । जैसे, जघन्य ( सबसे छोटा ), मध्यम ( बीचका ) और उत्कृष्ट ( सबसे बडा ) । इस प्रकार असंख्यातके भीतर निम्न संख्याएं प्रविष्ट हो जाती हैं---

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | जघन्य-परीत-असंख्यात | ........................ | अ प ज |
| २ | मध्यम-परीत-असंख्यात | ........................ | अ प म |
| ३ | उत्कृष्ट-परीत-असंख्यात | ........................ | अ प उ |
| १ | जघन्य-युक्त-असंख्यात | ........................ | अ यु ज |
| २ | मध्यम-युक्त-असंख्यात | ........................ | अ यु म |
| ३ | उत्कृष्ट-युक्त-असंख्यात | ........................ | अ यु उ |
| १ | जघन्य-असंख्यातासंख्यात | ........................ | अ अ ज |
| २ | मध्यम-असंख्यातासंख्यात | ........................ | अ अ म |
| ३ | उत्कृष्ट-असंख्यातासंख्यात | ........................ | अ अ उ |

(३) **अनन्त---** जिसका संकेत हम न मान चुके हैं । उसके तीन भेद हैं---

( अ ) परीत-अनन्त ( प्रथम श्रेणीका सनन्त ) जिसका संकेत हम न प मान लेने हैं ।

( ब ) युक्त-अनन्त ( बीचका अनन्त ) जिसका संकेत हम न यु मान लेते हैं ।

( स ) अनन्तानन्त ( निःसीम अनन्त ) जिसका संकेत हम न न मान लेते हैं ।

असंख्यातके समान इन तीनों भेदोंके भी प्रत्येकके पुनः तीन तीन प्रभेद होते हैं । जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट । अतः अनन्तके भेदोंमें हमें निम्न संख्याएं प्राप्त होती हैं---

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | जघन्य-परीतानन्त | ........................ | न प ज |
| २ | मध्यम-परीतानन्त | ........................ | न प म |
| ३ | उत्कृष्ट-परीतानन्त | ........................ | न प उ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| १ | जघन्य युक्तानन्त | ...................... | न यु ज |
| २ | मध्यम-युक्तानन्त | ...................... | न यु म |
| ३ | उत्कृष्ट-युक्तानन्त | ...................... | न यु उ |
| १ | जघन्य-अनन्तानन्त | ...................... | न न ज |
| २ | मध्यम-अनन्तानन्त | ...................... | न न म |
| ३ | उत्कृष्ट-अनन्तानन्त | ...................... | न न उ |

**संख्यातका संख्यात्मक परिमाण—** सभी जैन ग्रंथोंके अनुसार जघन्य संख्यात २ है, क्योंकि, उन ग्रंथोंके मतसे भिन्नताकी बोधक यही सबसे छोटी संख्या है। एकत्वको संख्यातमें सम्मिलित नहीं किया। मध्यम संख्यातमें २ और उत्कृष्ट संख्यातके बीचकी समस्त गणना आ जाती है, तथा उत्कृष्ट-संख्यात जघन्य-परीतासंख्यातसे पूर्ववर्ती अर्थात् एक कम गणनाका नाम है। अर्थात् स उ = अ प ज − १। अ प ज को त्रिलोकसारमें निम्न प्रकारसे समझाया है[1]—

जैन भूगोलानुसार यह विश्व, अर्थात् मध्यलोक, भूमि और जलके क्रमवार वलयोंसे बना हुआ है। उनकी सीमाएं उत्तरोत्तर बढ़ती हुई त्रिज्याओंवाले समकेन्द्रीय वृत्तरूप हैं। किसी भी भूमि या जलमय एक वलयका विस्तार उससे पूर्ववर्ती वलयके विस्तारसे दुगुना है। केन्द्र-वर्ती वृत्त ( सबसे प्रथम बीचका वृत्त ) एक लाख ( १००,००० ) योजन व्यासवाला है, और जम्बूद्वीप कहलाता है।

अब बेलनके आकारके चार ऐसे गड्ढोंकी कल्पना कीजिये जो प्रत्येक एक लाख योजन व्यासवाले और एक हजार योजन गहरे हों। इन्हें $अ_१$, $ब_१$, $स_१$ और $ड_१$ कहिये। अब कल्पना कीजिये कि $अ_१$ सरसोंके बीजोंसे पूरा भर दिया गया और फिर भी उस पर और सरसों डाले गये जब तक कि उसकी शिखा शंकुके आकारकी हो जाय, जिसमें सबसे ऊपर एक सरसोंका बीज रहे। इस प्रक्रियाके लिये जितने सरसोंके बीजोंकी आवश्यकता होगी उनकी संख्या इस प्रकार है—

बेलनाकार गड्ढेके लिये— $१९७९१२०९२९९९६८ \cdot १०^{३१}$। ऊपर शंक्काकार शिखाके लिये— १७९९२००८४५४५१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६। संपूर्ण सरसोंका प्रमाण— १९९७११२९३८४५१३१६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६३६-३६३६३६.

---

१ देखो त्रिलोकसार. गाथा ३५.

इस पूर्वोक्त प्रक्रियाको हम बेलनाकार गड्ढेका सरसोंके बीजोंसे 'शिखायुक्त पूरण' कहेंगे। अब उपर्युक्त शिखायुक्त पूरित गड्ढेमेंसे उन बीजोंको निकालिये और जम्बूद्वीपसे प्रारंभ करके प्रत्येक द्वीप और समुद्रके वलयोंमें एक एक बीज डालिये। चूंकि बीजोंकी संख्या सम है, इसलिये अन्तिम बीज समुद्रवलय पर पडेगा। अब एक बीज ब$_1$ नामक गड्ढेमें डाल दीजिये, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया एक बार होगई।

अब एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उस समुद्रकी सीमापर्यन्त व्यासके बराबर हो जिसमें वह अन्तिम सरसोंका बीज डाला हो। इस बेलनको अ$_2$ कहिये। अब इस अ$_2$ को भी पूर्वोक्त प्रकार सरसोंसे शिखायुक्त भर देनेकी कल्पना कीजिये। फिर इन बीजोंको भी पूर्व प्राप्त अन्तिम समुद्रवलयसे आगेके द्वीप-समुद्ररूप वलयोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे क्रमशः एक एक बीज डालिये। इस द्वितीय वार विरलनमे भी अन्तिम सरसों किसी समुद्रवलय पर ही पडेगा। अब ब$_1$ में एक और सरसों डाल दो, यह बतलानेके लिये कि उक्त प्रक्रिया द्वितीय वार हो चुकी।

अब फिर एक ऐसे बेलनकी कल्पना कीजिये जिसका व्यास उसी अन्तिम प्राप्त समुद्रवलयके व्यासके बराबर हो तथा जो एक हजार योजन गहरा हो। इस बेलनको अ$_3$ कहिये। अ$_3$ को भी सरसोंसे शिखायुक्त भर देना चाहिये और फिर उन बीजोंको आगेके द्वीपसमुद्रोंमें पूर्वोक्त प्रकारसे एक एक डालना चाहिये। अन्तमें एक और सरसों ब$_1$ में डाल देना चाहिये।

कल्पना कीजिये कि यही प्रक्रिया तब तक चालू रखी गई जब तक कि ब$_1$ शिखायुक्त न भर जाय। इस प्रक्रियामें हमें उत्तरोत्तर बढते हुए आकारके बेलन लेना पडेंगे—

अ$_1$, अ$_2$,............ अ$_र$,.........

मान लीजिये कि ब$_1$ के शिखायुक्त भरने पर अन्तिम बेलन अ' प्राप्त हुआ।

अब अ' को प्रथम शिखायुक्त भरा गड्ढा मान कर उस जलवलयके बादसे जिसमें पिछली क्रियाके अनुसार अन्तिम बीज डाला गया था, प्रारम्भ करके प्रत्येक जल और स्थलके वलयमें एक एक बीज छोडने की क्रियाको आगे बढाइये। तब स$_1$ में एक बीज छोडिये। इस प्रक्रियाको तब तक चालू रखिये जब तक कि स$_1$ शिखायुक्त न भर जाय। मान लीजिये कि इस प्रक्रियासे हमें अन्तिम बेलन अ'' प्राप्त हुआ। तब फिर इस अ'' से वही प्रक्रिया प्रारम्भ कर दीजिये और उसे ड$_1$ के शिखायुक्त भर जाने तक चालू रखिये। मान लीजिये कि इस प्रक्रियाके अन्तमें हमें अ''' प्राप्त हुआ। अतएव जघन्यपरीतासंख्यात